

श्रावक के द्वादश व्रत

(महोपाध्याय श्रीचन्द्रप्रभसागरजी महाराज)

व्रत श्रावकाचार का आधारभूत तत्व है। अनैतिक आचार से विरति ही व्रत है। तत्त्वार्थसूत्र में लिखा है कि हिंसानृतास्त्येया ब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।^१ अर्थात् हिंसा, असत्य, अचौर्य मैथुन व परिग्रह से विरति व्रत है। व्रत वस्तुतः वह धार्मिक कृत्य या प्रतिज्ञा है, जिसके पालन से व्यक्ति अशुभ से मुक्त होता है एवं शुभ तथा शुद्धत्व की यात्रा करता है।

जैनागमों में श्रावक के १२ व्रतों का वर्णन किया गया है, जिनका विभाजन इस प्रकार है — १. पाँच अणुव्रत, २. तीन गुणव्रत और ३. चार शिक्षा व्रत। गुणव्रतों और शिक्षाव्रतों को समवेत रूप में शीलव्रत भी कहा जाता है। तत्त्वार्थसूत्र में अणुव्रतों को ही श्रावक का व्रत कहा है। शीलव्रत को मूल व्रत न कहकर अणुव्रतों के पालन में सहायक बताया गया है। जबकि श्रावकधर्म प्रज्ञप्ति में लिखा है —

पंचेव अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं च हुंति तिन्नेव।
सिक्खावयाइं चउरो, सावगधम्मो दुवालसहा।^२

अर्थात् श्रावक-धर्म पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रत - यों बारह प्रकार का है।

योगशास्त्र में भी यही वर्णित है :-

सम्यक्त्वमूलानि, पन्चाणुव्रतानि गुणास्यः।
शिक्षापदानि चत्वारि, व्रतानि गृहमेधिनाम्॥^३

अणुव्रत

जिनेन्द्र देव ने दो करण, तीन योग, आदि से स्थूल हिंसा और दोषों के त्याग की अहिंसा आदि को पाँच अणुव्रत कहा है -

विरतिं स्थूलहिंसादेर्द्विविधत्रिविधादिना।

अहिंसादीनि पन्चाणुव्रतानि जगदुर्जिनाः॥

आतुरप्रत्याख्यान में अणुव्रतों के संबंध में लिखा है -

पाणिवहमुसावाए, अदत्तपरदारनियमणेहिं च।

अपरिमिइच्छाओ वि य, अणुव्वयाइं विरमणांइं^४

अर्थात् प्राणि-वध (हिंसा), मृषावाद (असत्य वचन), अदत्त वस्तु का ग्रहण (चोरी) परस्त्री सेवन (कुशील) तथा अपरिमित कामना (परिग्रह) इन पाँचों पापों से विरति अणुव्रत है।

अब हम उक्त पाँचों अणुव्रतों पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

१. अहिंसाणुव्रत

न केवल अणुव्रतों का अपितु समस्त जैन आचार का मूल अहिंसा है। अहिंसा परमो धर्मः। श्रावकाचार के अन्तर्गत अहिंसा के सम्बन्ध में इतना ही लिखना अपेक्षित है कि गृहस्थ को स्थूल हिंसा

से विरत होना चाहिए। चूंकि श्रावक गृही-जीवन-यापन करता है। अतः वह हिंसा से सर्वथा अलग नहीं हो सकता। इसलिए अहिंसाणुव्रत के परिपालन के लिए यह कहा गया है कि श्रावक स्थूल हिंसा कभी न करे, सूक्ष्म हिंसा भी उससे न हो, इसका भी उसे ध्यान रखना चाहिए। यतनाचार/विवेक पूर्वक अपने गार्हस्थ्य जीवन को बिताये।

शास्त्र में अहिंसा - अणुव्रत पालन करने के लिए कुछेक आज्ञाएं दी गयी हैं। —

१. क्रोध आदि कषायों से मन को दूषित करके पशु तथा मनुष्य आदि का बन्धन नहीं करना चाहिए।
२. डण्डे आदि से ताड़न-पीटन नहीं करना चाहिए।
३. पशुओं के नाक आदि अंगों का छेदन नहीं करना चाहिए।
४. शक्ति से अधिक भार लादना नहीं चाहिए।
५. खान-पान आदि जीवन-साधक वस्तुओं का निरोध नहीं करना चाहिये।

उक्त कर्म हिंसा रूप है। अतः इनका त्याग अहिंसा-अणुव्रत का पालन है।

सावयपण्णति में इसी का उल्लेख मिलता है -

बंध्वहह्विच्छेए, अइभारे भूत्तपाणवुच्छेए।

को हा इदूसियमणो, गोमणयाईण नो कुज्जा।^५

तत्त्वार्थ सूत्र में भी उक्त पाचों अतिचारों का उल्लेख हुआ है।^६

पाक्षिक अतिचार सूत्र में इस तथ्य का कुछ विस्तार से विवेचन हुआ है।

आचार्य हेमचन्द्र का अभिमत है कि पंगुपन, कोढ़ीपन और कुणित्व आदि हिंसा के फलों को देखकर विवेकवान् पुरुष निरपराध त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करे। अहिंसा-धर्म का ज्ञाता और मुक्ति की अभिलाषा रखनेवाला श्रावक स्थावर जीवों की भी निरर्थक हिंसा न करे।

पंगुकुष्ठिकुणित्वादि, दृष्ट्वा हिंसाफलं सुधीः ।

निरागस्त्रसजन्तुनांक, हिंसा संकल्पतस्त्यजेत् ॥

निरर्थिकां न कुर्वीत, जीवेषु स्थावरेष्वपि ।

हिंसामहिंसाधर्मज्ञः, काङ्क्षन्मोक्षमुपासकः ॥^७

इन्हीं आचार्य के द्वारा हिंसा की निन्दा करते हुए कहा गया है कि हिंसा से विरक्त व्यक्ति अपंग एवं रोगी होते हुए भी हिंसारत सर्वांग सम्पन्न व्यक्ति से श्रेष्ठ है। विघ्नों को शान्त करने के प्रयोजन से की हुई हिंसा भी विघ्नों को ही उत्पन्न करती है और कुल के आचार का पालन करने की बुद्धि से भी की हुई हिंसा कुल का विनाश कर देती है। यदि कोई मनुष्य हिंसा का परित्याग नहीं करता

है तो उसका इन्द्रिय-दमन, देवोपासना, गुरुसेवा, दान, अध्ययन और तप ये सब निष्फल हैं।

कुर्णिवरं वरं पंगुरशरीरी वरं पुमान् ।

अपि सम्पूर्णसर्वाङ्गो, न तु हिंसापरायणाः ॥

हिंसा विघ्नाय जायेत, विघ्नशान्त्यै कृता पि हि ।

कुलाचारविधा प्येषा, कृता कुलविनाशिनी ।

दमो देव-गुरुपास्तिर्दानमध्ययनं तपः ।

सर्वमप्येतदफलं, हिंसा चेन्न परित्यजेत् ॥^८

इस अणुव्रत को स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत भी कहा जाता है।

२. सत्याणुव्रत

“सत्यमेव जयते” - सत्य की विजय होती है और असत्य की पराजय। जो सत्पुरुष ज्ञान और चारित्र के कारणभूत सत्य वचन ही बोलते हैं, उनके चरणों की रज पृथ्वी को पावन बनाती है -

ज्ञान-चारित्रयोर्मलं, सत्यमेव वदन्ति ये ।

धात्री पवित्रीक्रियते, तेषां चरणरेणुभिः ।^९

स्थूल असत्य से विरत होना सत्याणुव्रत है। मृषावाद विरमण व्रत इसी का अपर नाम है। सत्याणुव्रती गृहस्थ को कतिपय दोषों से बचने का निर्देश दिया गया है। तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार सत्याणुव्रती को मिथ्या उपदेश, असत्य दोषारोपण, कूटलेखक्रिया, न्यास-अपहार और मन्त्र भेद अर्थात् गुप्त बात प्रकट करना + इन पाँच अतिचारों से बचना चाहिए मिथ्योपदेश - रहस्याख्यानकूट लेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः।^{१०} “सावयपण्णति” में प्राप्त उल्लेखों के अनुसार कन्या-अलीक, गो-अलीक व भू-अलीक अर्थात् कन्या, गो (पशु) तथा भूमि के विषय में झूठ बोलना, किसी की धरोहर को दबा लेना और झूठी गवाही देना - इनका त्याग स्थूल असत्य विरति है। साथ ही साथ सत्य-अणुव्रती बिना सोचे-समझे न तो कोई बात करता है, न किसी का रहस्योद्घाटन करना है, न अपनी पत्नी की कोई गुप्त बात मित्रों आदि में प्रगट करता है, न मिथ्या अहितकारी उपदेश करता है और न कूटलेख क्रिया जाली हस्ताक्षर या जाली दस्तावेज आदि करता है। मूल सूत्र ये हैं :-

थूल मुसावायास्स उ, विरई दुत्वं स पंचहा होई ।

कन्नामोभू आल्लिय, नासहरणकूडसविखज्जे ।

सहसा अब्भक्खाणं रहस्सा य सहारमंत मोयं च ।

मोसोवए सयं कूडलेह करणं च वज्जजज्जा ॥^{११}

योगशास्त्र में भी कन्यालीक आदि पूर्व संकेतित स्थूल असत्य कहे हैं।^{१२}

इस शास्त्र में यह भी वर्णित है कि इन पाँच स्थूल असत्त्यों का उपयोग क्यों वर्जित है। इसके अनुसार कन्यालीक, गो-अलीक और भूमि अलीक-लोक विरुद्ध हैं। न्यासापहार विश्वासघात का जनक है और कूटसाक्षी पुण्य का नाश करने वाली है। अतः श्रावक को स्थूल मृषावाद नहीं बोलना चाहिए।

सर्वलोकविरुद्धं यद्यद्विश्वसितघातकम् ।

यद्विपक्षश्च पुण्यस्य, न वदेत्तदसूनुतम् ॥^{१३}

स्थानांगसूत्रानुसार सत्याणुव्रती को असत्य वचन, तिरस्कार युक्त वचन, झिड़कते हुए वचन, कठोर वचन, अविचारपूर्ण वचन और शान्त कलह को पुनः भड़काने वाले वचन नहीं बोलने चाहिए।

इमां छ अवयणां वदित्तए -

अलियवयणे, हीलियवयणे खिसितवयणे फरसवयणे ।

गारत्थियवयणे, विउसवित्त वा पुणाउदीरित्तए ।^{१४}

वस्तुतः जो वचन तथ्य होने पर भी पीड़ाकारी हो, वह भी असत्य में ही परिगणित है। हेमचन्द्राचार्य ने स्पष्ट कहा है “न सत्यमपि भाषेत, परपीडाकरं वचः” अर्थात् जो वचन भले ही सत्य कहलाता हो, किन्तु दूसरे को पीड़ा उत्पन्न करने वाला हो, तो वह भी नहीं बोलना चाहिए।

व्यक्ति निम्न चौदह कारणों से असत्य का सेवन करता है -

१. क्रोध २. अभिमान ३. कपट ४. लोभ ५. राग ६. द्वेष ७. हास्य ८. भय ९. लज्जा १०. क्रीडा ११. हर्ष १२. शोक १३. दाक्षिण्य तथा १४. बहुभाषण।

श्रावकाचार का पालन करने वाला उक्त दोषों से बचने का प्रयास करे।

३. अदत्तादानविरमणव्रत

जिस वस्तु का जो स्वामी है, उसके द्वारा प्रदत्त वस्तु को ग्रहण करना दत्तादान है और उसके बिना दिये उसकी वस्तु को लेना अदत्तादान है। यह श्रावक का तृतीय अणुव्रत है। इसे अस्तेयाणुव्रत या अचौर्याणुव्रत भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत गृहस्थ को स्थूल चौर्यकर्म से विरत होना है।

लोकनिन्द्य और राज्य द्वारा दंडनीय चोरी का श्रावक त्याग करता है। चोरी करने से व्यक्ति “चोर” कहलाता है, राजदण्ड और निन्दा पाता है, अतः चोरी/अदत्तादान श्रावक के लिए त्याज्य है। चौर्यकर्म की निन्दा करते हुए आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि जो पराये धन का अपहरण करता है, वह अपने इस लोक को, परलोक को, धैर्य, स्वास्थ्य और हिताहित के विवेक को, हरण करता है। दूसरे के धन को चुराने से इस लोक में निन्दा होती है, परलोक में दुःख का संवेदन करना पड़ता है, धर्म का धीरज का और सन्मति का नाश होता है। चौर्य-कर्म करने के कारण मनुष्य कहीं भी स्वस्थ - निश्चिन्त नहीं रह पाता दिन में रात में, सोते समय और जागते समय, सदा सर्वदा वह सशल्य बना रहता है। चोरी का द्विफल बताते हुए आचार्य कहते हैं कि चोरी से इस लोक में वध, बन्धन आदि फल प्राप्त होते हैं और परलोक में नरक की भीषण वेदना का संवेदन प्राप्त होता है। मूल सूत्र इस प्रकार है :-

अयं लोकः परलोको, धर्मो धैर्यधृतिर्मतिः ।

मुष्णता परकीयं स्वं, मुषितं सर्वमप्यदः ॥

दिवसे वा रजन्यां, वा स्वप्ने वा जागरे पि वा ।

सशल्य इव चौर्येण, नैति स्वास्थ्यं नरः, क्वचित् ।

चौर्यपाप-द्रुमस्येह, वध-बन्धादिक फलम् ।

जायते परलोके तु, फलं नरक - वेदना ॥^{१५}

अचौर्याणुव्रती को निम्नांकित दोषों से बचना चाहिए - तत्वार्थ—
सूत्रानुसारं स्तेनप्रयोगतदाहदतादानविरुद्ध - राज्याति-
क्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपक व्यवहाराः।^{१६}

भावार्थ यह है कि चोरी की गयी वस्तु का क्रय करना, चोरों को चोरी करने में सहयोग देना, राजकीय नियमों के विरुद्ध कार्य करना, मापतौल में बेईमानी करना, वस्तुओं में मिलावट करना - इन पाँच चौर्य-दूषणों से बचना अचौर्याणुव्रत है। सावयपण्णति में भी लगभग यही निर्देश मिलता है -

वज्जिज्जा तेना हड, तक्कर जोगं विरुद्धरज्जं च ।
कूड तुल कूडमाणं, तप्प डि रूप च ववहारं ॥^{१७}

अदत्तादान - विरमणव्रत का सुफल बताते हुए कहा गया है कि शुद्ध चित्त से जिन पुरुषों ने पराये धन को ग्रहण करना त्याग दिया है, उनके सामने स्वयं लक्ष्मी स्वयंवरा की भांति चली आती हैं। उनके समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं। सर्वत्र उनकी प्रशंसा होती है और उन्हें स्वर्गिक सुख प्राप्त होते हैं:-

परार्थग्रहणे येषां, नियमः शुद्धचेतसाम् ।
अभ्यायान्ति श्रियस्तेषां, स्वयमेव स्वयंवराः ॥
अनर्था दूरतो यान्ति, साधुवादः प्रवर्तते ।
स्वर्गसौख्यानि ढौकन्ते, स्फुटमस्तेयचारिणाम् ॥^{१८}

ब्रह्मचर्याणुव्रत

स्वपत्नी में ही सन्तोष करना तथा काम-सेवन की मर्यादा बांधना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इसीलिए इसे स्वदार सन्तोषव्रत भी कहा जाता है। यद्यपि कुछ आचार्यों के अनुसार यह व्रत दो प्रकार का है —

१. स्वस्त्री-सन्तोषव्रत तथा परस्त्री त्यागव्रत।
इनमें प्रथम व्रत का पालन करने वाला श्रावक अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियों के साथ भोग करने का परित्याग करता है। जबकि परस्त्री, त्यागव्रती श्रावक दूसरों की विवाहित स्त्रियों का ही त्याग करता है। इसलिए यह कहना अधिक युक्तिसंगत है कि श्रावक स्वस्त्री - सन्तोषी बनकर परस्त्री गमनका त्याग करें। इस व्रत का विधान व्यक्ति की काम वासना को सीमिततर करने के लिए है। आचार्य हेमचन्द्र ने परस्त्रीगमन का कुफल बताते हुए कहा है कि अपने प्रचण्ड पराक्रम से अखिल विश्व को आक्रान्त कर देनेवाला रावण भी, परस्त्री-रमण की इच्छा के कारण अपने कुल का विनाश करके नरक गया -

विक्रमाक्रान्तविश्वोऽपि, परस्त्रीषु रिरंसया ।
कृत्वा कुलक्षयं प्राप, नरकं दशकन्धरः ॥^{१९}

जिस प्रकार से परस्त्रीगमन त्याज्य है, वैसे ही पर-पुरुष सेवन भी त्याज्य है। योगशास्त्र में लिखा है -

ऐश्वर्यराजराजोपि, रूपमीनध्वजोपि च ।
सीतया रावण इव, त्याज्यो नार्या नरः परः ॥^{२०}

अर्थात्, ऐश्वर्य से कुबेर के समान, रूप से कामदेव के समान, सुन्दर होने पर भी स्त्री को परपुरुष का उसी प्रकार त्याग कर देना चाहिए, जैसे सीता ने रावण का त्याग किया था।

ब्रह्मचर्याणुव्रती को निम्न अतिचारों / दोषों का सेवन नहीं करना चाहिए -

परस्त्री, कुमारी, वेश्या के साथ समागम करना, हस्तमैथुन करना, समलिंगी या पशु से मैथुन करना, स्वसन्तान तथा परिजनों के अतिरिक्त परविवाह सम्बन्ध करना, तीव्र कामभोग की इच्छा करना या मादक पदार्थों का सेवन करना - इन दोषों से ब्रह्मचर्याणुव्रती गृहस्थ को परे रहना चाहिए। उक्त तथ्य का उल्लेख शास्त्रों में संक्षेप में इस प्रकार मिलता है :-

इत्तरिय परिग्गहिया परिग्गहियागमणाणं गकीडं च ।
पर विवाहक्करणे, कामे तिव्वाभिलासं च ॥^{२१}
परविवाहकरणेत्वरपरिगृहीता परिगृहीतागमना
नड क्रीडातीव्रकामाभिनवेशाः ॥^{२२}

५. परिग्रह - परिमाणानुव्रत

इसे अपरिग्रहाणुव्रत भी कहा गया है। इसके अन्तर्गत श्रावक को अपने संग्रह या परिग्रह की एक सीमा निर्धारित करनी होती है। अधिक परिग्रह अधिक इच्छा/तृष्णा का कारण है। मूर्च्छा आसक्ति इच्छाओं की बढ़ोतरी को रोकने के लिए एवं सन्तोष धारण करने के लिए ही इस व्रत का विधान है। इसीलिए इसे इच्छा-परिमाण-व्रत भी कहा गया है। उपदेशमाला में लिखा है कि अपरिमित परिग्रह अनन्त तृष्णा का कारण है। वह बहुत दोषयुक्त है तथा नरकगति का मार्ग है।

विरया परिग्गहाओं अपरिमिआओ अणंत तण्हाओ ।
बहु दोसंकुलाओ, नरयागगमण पंथाओं ।^{२३}

“भक्त-परीक्षा” ग्रन्थानुसार जीव परिग्रह के निमित्त हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, मैथुन का सेवन करता है, और अत्यधिक मूर्च्छा करता है। इस प्रकार परिग्रह पांचों पापों की जड़ है -

संगनिमित्तं मारई, भणइ अलीणं करेइ चोरिकं ।
सेवई मेहुणं मुच्छं, अप्परिमाणं कुणई जीवों ।^{२४}

हेमचन्द्राचार्य ने भी परिग्रह के दोष बताए हैं। उनके अभिवचनानुसार जो राग-द्वेषादि दोष उदय में नहीं होते, वे भी परिग्रह की बढौलत प्रकट हो जाते हैं। जनसाधारण की तो बात ही क्या है, परिग्रह के प्रलोभन से मुनियों का चित्त भी चलायमान हो जाता है। उन्होने परिग्रह को हिंसा का मूल बताते हुए यह भी कहा है कि जीवहिंसा आदि आरम्भ जन्म-मरण के मूल हैं और उन आरम्भों का कारण परिग्रह है। अर्थात् परिग्रह के लिए ही आरम्भसमारम्भ किये जाते हैं। अतः श्रावक को चाहिए कि वह परिग्रह को क्रमशः घटाता जाए। द्रष्टव्य है उनके स्वयं के पद -

सद्भवन्त्यसन्तोपि, राग-द्वेषोदये द्विषं ।
मुनेरपि चलेच्चेतो, यत्तेनादोलितात्मनः ॥
संसारमूलमारम्भास्तं हेतुः परिग्रहः ।
तस्मादुपासकः कुर्यादल्पमल्प परिग्रहम् ॥^{२५}

परिग्रह से मनुष्यों की तृप्ति अशक्य है। यह सर्व प्रसिद्ध है

कि द्वितीय चक्रवर्ती सगर साठ हजार पुत्र पाकर भी सन्तोष न पा सका। कुचिकर्ण बहुत से गोधन से तृप्ति का अनुभव न कर सका। तिलक-श्रेष्ठी धान्य से तृप्त नहीं हुआ और नन्द नामक नृपति स्वर्ण के ढेरों से भी सन्तोष नहीं पा सका। सचमुच, जैसे ईधन बढ़ाते जाने से अग्नि शांत नहीं होती, उसी प्रकार परिग्रह से लोगों की तृप्ति नहीं होती। जब कि जिस व्यक्ति का भूषण सन्तोष बन जाता है, समृद्धि उसी के पास रहती है, उसी के पीछे कामधेनु चलती है और देवता दास की तरह उसकी आज्ञा मानते हैं।

योगशास्त्र इसी का समर्थन करता हुआ कहता है :-

सन्निधौ निधयस्तस्य कामगव्यनुगामिनी ।

अमराः किंकरायन्ते, संतोषो यस्य भूषणम् ॥ २६

परिग्रह - परिमाण - अणुव्रती विशुद्ध चित्त श्रावक को क्षेत्र मकान, सोना—चांदी, धन-धान्य, द्विपद-चतुष्पद तथा भण्डार-संग्रह आदि परिग्रह के अंगीकृत परिमाण का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

खिताई हिरण्णाई, धणाई दुपयाई-कुवियगस्स तथा ।

सम्म विसुद्धचित्तो, न पमाणमाइक्कम कुज्जा ॥ २७

भगवती आराधना में निम्न दस परिग्रह बताये हैं - खेत, मकान, धन-धान्य, वस्त्र भाण्ड, दास-दासी, पशुयान, शय्या और आसन।^{२८}

श्रावक इनकी सीमा रेखा निर्धारित करता है। तत्त्वार्थसूत्र में भी लगभग इन्हीं का पिष्टपेषण है : क्षेत्रपास्तुहिरण्यसुवर्णधन-धान्यदासी दासकुप्यप्रमाणितिक्रमाः।^{२९}

गुणव्रत

श्रावक के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच अणुव्रतों के गुणों में अभिवृद्धि करने वाले दिक् देश तथा अनर्थदण्ड नामक तीन व्रतों को गुणव्रत कहते हैं। “आतुर प्रत्याख्यान” में इन्हीं तीन गुणव्रतों का उल्लेख किया गया है —

जं च दिसावेरमणं, अणत्थदंडाड जं च वेरमणं ।

देसावगासियं पि य, गुणव्वयाई भवे ताइ ॥ ३०

अर्थात् श्रावक के तीन गुणव्रत होते हैं: दिग्विरति, अनर्थदण्ड विरति तथा देशावकाशिक। तत्त्वार्थ सूत्र में भी यही नाम एवं क्रम दिया गया है।^{३१}

किन्तु योगशास्त्र में कुछ भिन्नता है। उसके अनुसार दिग्व्रत, भोगोपभोग व्रत और अनर्थदण्ड व्रत - ये तीन गुणव्रत हैं। दिग्व्रत के साथ देशावकाशिक व्रत का सीधा सम्बन्ध है। अतः हम गुणव्रतों में भोगोपभोग व्रत को स्वीकार न करके दिग्व्रत को ही स्वीकार कर रहे हैं :-

दिग्व्रत

परिग्रह - परिणाम व्रत के रक्षार्थ व्यापार आदि के क्षेत्र को सीमित रखने में सहायक गुणव्रत को दिग्व्रत कहते हैं। इसे दिशाविरति तथा दिशापरिमाण व्रत भी कहा जाता है।

जिस व्यक्ति ने दिग्व्रत अंगीकार कर लिया है, उसने जगत् पर आक्रमण करने के लिए अभिवृद्धि लोभरूपी समुद्र को आगे बढ़ने से रोक दिया है। इस व्रत को धारण करने के पश्चात् मनुष्य लोभ के

कारण दूर-दूर देशों में अधिकाधिक व्यापार करने के लिये जाने से रुक जाता है और परिणामस्वरूप लोभ पर अकुंश लग जाता है। हेमचन्द्राचार्य के शब्दों में —

जगदाक्रममाणस्य, प्रसरल्लोभवारिधेः ।

स्खलनं विदधे तेनं. येन दिग्विरतिः कृता ॥ ३२

सामायिक पाठ में कहा गया है कि व्यवसाय क्षेत्र को सीमित करने के आशय से उर्ध्वदिशा, अधोदिशा, तथा तिर्यकदिशा में गमना-गमन की सीमा बांधना प्रथम गुणव्रत है।

उड्ढ महे तिरियं पि य, दिसा नु परिमाणकरमणमिह पढमं ।

भणियं गुणव्वयं खलुं, सावग धम्मम्मि वीरिणं ३३

तत्त्वार्थ सूत्र में लिखा है कि उर्ध्वदिशस्तिर्यग्व्यतिक्रम क्षेत्रवृद्धि स्मृत्यन्तर्धानानि^{३४}

दिग्व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं १. विभिन्न दिशाओं में जाने की, की हुई मर्यादा को भूल जाना, २-४ ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यग् तिरछी दिशा में भूल से, परिमाण से आगे चला जाना और क्षेत्र की वृद्धि करना अर्थात् एक दिशा के परिमाण को घटाकर दूसरी दिशा का बढ़ा लेना जिससे परिमाण से आगे जाने का काम पड़ने पर आगे भी जा सके -

स्मृत्यन्तर्ध्वदिशस्तिर्यग्भागव्यतिक्रमः ।

क्षेत्रवृद्धिश्च पति स्मृता दिग्विरतिव्रते ॥

देशव्रत या देशावकाशिक व्रत

इच्छाओं को सीमित करने के लिये इस व्रत का विधान है। देश-देशान्तर में गमनागमन से व्यापार संबंधी दिशा मर्यादा व्रत में या जिस देश में जाने से परिगृहीत व्रत के भंग होने का भय हो वहाँ जाने का त्याग करना ही देशावकाशिक व्रत है।

योगशास्त्रानुसार :-

दिग्व्रते परिमाणं, यत्तस्य संक्षेपणं पुनः ।

दिने रात्रौ च देशावकाशिक - व्रतमुच्यते ॥ ३५

अर्थात् दिग्व्रत में गमनागमन के लिये जो परिमाण नियत किया गया है उसे दिन तथा रात्रि में संक्षिप्त कर लेना देशावकाशिक व्रत है।

वसुनन्दी श्रावकाचार में यही बात कही गयी है कि जिस देश में जाने से किसी भी व्रत का भंग होता हो या उसमें दीष लगता हो उस देश में जाने की नियमपूर्वक प्रवृत्ति देशावकाशिक नामक द्वितीय गुणव्रत है।

वयभंगकारण होइ, जीम्म देसम्मि तत्थ णियमेण ।

कीरइ गमणणियत्तो, तं जाण गुणव्वयं विदियं ॥ ३६

इस व्रत के पाँच अतिचार हैं :- आनयन—प्रेष्य—प्रयोग शब्दरूपानुपात पुद्गलक्षेपाः।^{३७} अर्थात् निर्धारित क्षेत्र के बाहर से वस्तु लाना या मंगवाना, निर्धारित क्षेत्र के बाहर वस्तु लाना या मंगवाना, निर्धारित क्षेत्र के बाहर वस्तु भेजना, निर्धारित क्षेत्र के बाहर आवाज देना, निर्धारित क्षेत्र के बाहर खड़े व्यक्ति को बुलाने के अभिप्राय से हाथ आँख आदि अंगों से संकेत करना और कंकड़ आदि फेंकना।

अनर्थदण्ड व्रत

प्रयोजन - विहीन कार्यों का त्याग ही अनर्थदण्डव्रत/विरति है।

प्रयोजनवश कार्य करने से अल्प कर्मबन्ध होता है। और बिना प्रयोजन कार्य करने से अधिक कर्मबन्ध होता है। क्योंकि प्रयोजनपूर्वक कार्य में तो देश-काल आदि परिस्थितियों की सापेक्षता रहती है, लेकिन निष्प्रयोजन प्रवृत्ति तो नित्य ही अमर्यादित रूप से की जा सकती है।^{३८}

सावय पण्णति में अनर्थदण्ड के चार भेद बताये हैं :-

१. अपध्यान २. प्रमादपूर्णचर्या ३. हिंसा के उपकरण आदि देना और ४. पाप का उपदेश। इन चारों अनर्थदण्डों का परित्याग अनर्थदण्डविरति नामक तृतीय गुणव्रत है।

योगशास्त्र में उल्लिखित है कि शरीर आदि के निमित्त होने वाली हिंसा अर्थ-दण्ड है। और निरर्थक-निष्प्रयोजन की जानेवाली हिंसा अनर्थदण्ड है। इस अनर्थदण्ड का त्याग करना गृहस्थ का तीसरा गुणव्रत है। मूल शब्दानुसार :-

शरीराधर्थदण्डस्य, प्रतिपक्षतया स्थितः ।

योऽनर्थदण्डस्तत्यागस्तृतीयस्तत गुणव्रतम् ॥^{३९}

विरई अण्णतथदंडे, तच्च चउव्विहो अवज्झाणों पमाययरिय, हिंसप्याण पावोवएसे य॥^{४०}

अनर्थदण्ड विरतश्रावक को निम्न मर्यादाओं का अतिरेक नहीं करना चाहिए।

कन्दकौत्कुच्यमौखर्या समीक्ष्याधिकरणोपभोगाधिकत्वानि।^{४१}

अर्थात् कन्दर्प - हास्यपूर्ण अशिष्ट वचनों का प्रयोग, कौत्कुच्चशारीरिक कुचेष्टा, मौखर्य-व्यर्थ बकवास, समीक्ष्याधिकरण हिंसा के अधिकरणों का संयोजन तथा उपभोगाधिकत्व भोग्य सामग्री का आवश्यकता से ज्यादा संचय।

शिक्षाव्रत

श्रावक का लक्ष्य है श्रमणधर्म की ओर बढ़ना। श्रमणधर्म की शिक्षा या अभ्यास हेतु इन व्रतों को शिक्षाव्रत कहते हैं। आतुर प्रत्याख्यान में निम्न चार शिक्षाव्रत बताएँ हैं- १. भोगों का परिमाण २. सामायिक ३. अतिथि संविभाग ४. पौषधोपवास -

भोगाणं परि संख्या सामाइय - अतिहि संविभागो य ।

पोसह विहीयसव्वो, चउरो सिक्खाउ बुताओं ॥^{४२}

तत्त्वार्थ सूत्र में शिक्षाव्रत तो यही उल्लेखित है, किन्तु क्रम में भेद है, जो कि तुलनात्मक अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। तत्त्वार्थ सूत्र के शिक्षाव्रतों का क्रम इस प्रकार है :- १. सामायिक व्रत २. पौषधोपवास व्रत ३. उपभोग - परिभोग व्रत ४. अतिथि संवित व्रत^{४३}। धर्मबिन्दु में भोगोपभोग परिमाण व्रत के स्थान पर देशावकासिक व्रत को स्वीकार किया गया है^{४४} ५ उक्त चारों शिक्षाव्रतों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है -

१/१ भोगोपभोग परिमाण - व्रत

भोगलिप्सा को नियन्त्रित करने के लिए इस व्रत को श्रावकाचार के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। यह व्रत ब्रह्मचर्यागुणव्रत के पालन

में विशेष सहयोगी है। भोग तथा परिभोग की वस्तुओं के ग्रहण को सीमित करना ही भोग परिभोग परिणाम व्रत कहलाता है। भोगपरिभोग परिमाण व्रत दो प्रकार का है। भोजन रूप तथा कार्य या व्यापार रूप। कन्दमूल आदि अनन्तकायिक वनस्पति, औदुम्बर फल और मद्य मांसादि का त्याग या परिमाण भोजन विषयक भोगोपभोग परिमाण व्रत है और हिंसापरक आजीविका आदि का त्याग व्यापार विषयक भोगोपभोग परिमाण व्रत है।^{४५}

हेमचन्द्राचार्य ने भोगोपभोग व्रत की व्याख्या करते हुए जो लिखा है उसका आशय यह है:-

भोगोपभोगयोः संख्याशक्त्यायत्र विधीयते।

भोगोपभोगमानं तद् द्वितीयक गुणव्रतम् ॥

सकृदेव भुज्यते यः स भोग स्नादिकः ।

पुनः पुनः पुनर्भोग्य, उपभोगो नादिकः ॥^{४६}

शक्ति के अनुसार जिस व्रत में भोगोपभोग के योग्य पदार्थों की संख्या का नियम किया जाता है, वह भोगोपभोग परिमाण व्रत है। जो वस्तु एक बार भोग के काम में आती है उसे भोग कहते हैं और जो वस्तु पुनः पुनः उपभोग में ली जाती है वह उपभोग कहलाती है। आचार्य हेमचन्द्र ने श्रावक के लिये निम्न वस्तुओं का सर्वथा अथवा यथाशक्य त्याग करने का निर्देश दिया है —

मद्यं मांसं नवनीतं मधूदुंबरपन्चकम् ।

अनन्तकायमज्ञातफलं रात्रौ च भोजनम् ॥

आम्र गोरस संपृक्तं, द्विदलं पुष्पितौदनम् ।

दध्यहर्द्वितीयातीतं क्वथितात्रं विवर्जयेत् ॥^{४७}

शराब, मांस मक्खन शहद, पंच उदम्बर फल, अनन्तकाय, अज्ञात फल रात्रि भोजन कच्चे दूध, दही तथा छाछ के साथ द्विदल खाना, बासी अनाज, दो दिन के बाद का दही तथा सड़े अन्न का त्याग करना चाहिए।

१०/२ सामायिक

पापारम्भ वाले सम्पूर्ण कार्यों से निवृत्ति सामायिक है। सामायिक श्रमण जीवन का प्राथमिक रूप है और गृहस्थ जीवन का अनिवार्य कर्तव्य है। विशेषावश्यक भाष्य में स्पष्ट कहा गया है कि सामाइयम्मि उकए, समणो इव समावो हवई अर्थात् सामायिक करने से सामायिक काल में श्रावक श्रमण के समान हो जाता है। इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं कि सावद्ययोग अर्थात् हिंसारम्भ से बचने के लिए केवल सामायिक ही प्रशस्त है। उसे श्रेष्ठ गृहस्थ धर्म जानकर बुद्धिमान लोगों को आत्महित तथा मोक्षप्राप्ति के लिए सामायिक करनी चाहिये।

सावज्जजोगपरिरक्खणट्ट, सामाइयं केवलियं पसत्थं ।

गिहत्त धम्मा पुरमं ति नच्चा, कुज्जा बुहो आयहियं परत्थो

वस्तुतः समभाव ही सामायिक है। निन्दा और प्रशंसा, मान और अपमान, स्वजन और परजन सभी में जिसका मन समान है, उसी जीव को सामायिक होती है, समभाव की साधना होती है।

निदपसंसासु समो, समो य माणावमाणं कारीसु ।

समसयण परयण मणो सामाइयं संगओ जीओ ॥^{४८}

जो त्रस और स्थावर सभी जीवों के प्रति समत्वयुक्त है, उसी की सच्ची सामायिक होती है, ऐसा परमज्ञानी केवली ने परिभाषित

किया है।

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ।
तस्स सामाइयं होई, इह केवली भासियं ॥ ४९(क)

इसी प्रकार जिसकी आत्मा संयम, नियम और तप में तल्लीन है, उसी की सच्ची सामायिक होती है, ऐसा केवली भगवान ने कहा है —

जस्स समाणिओ अप्पा, संजमें णिअमे तवे ।
तस्स सामाइयं होइ, इह केवली भासियं ॥ ४९(ख)

इस सामायिक की साधना दुर्लभ है। कहा जाता है कि देवता लोग भी अपने हृदय में यह विचार करते हैं कि यदि एक मुहूर्त मात्र भी हमें सामायिक की सामग्री मिल जाये तो हमारा देवत्व सफल हो जाये।

सामाइयसामागिं देवावि चितंति हियय मज्झंमि ।
जइ होइ मुहूत्तमेगे, तो अह देवतणं सहलं ॥ ५०
सामायिक करने वाले दो प्रकार के होते हैं :-

१. ऋद्धिमन्त और ऋद्धि रहित। अऋद्धिवान लोग तो मुनियों के पास जिन मन्दिर में पोषधशाला उपाश्रय स्थानक में अपने घर पर अथवा कोई भी निर्विघ्न स्थान पर सामायिक करे और जो ऋद्धिमन्त पुरुष हैं वे साडम्बर उपाश्रय आकर सामायिक करे, ताकि जिन शासन की प्रभावना भी हो।

यद्यपि सामायिक समता की साधना है, किन्तु गृहस्थ जीवन में पूर्वतया समभाव होना दुष्कर है। अतः उसके लिये समय की सीमा निर्धारित कर दी गयी। एक सामायिक का काल ४८ मिनट है। श्रावक को एकाधिक सामायिक करनी चाहिए। यदि अधिक न कर सके तो एक दिन में एक सामायिक तो अवश्यमेव करनी चाहिए। सामायिक करने के लिए प्रातःकाल एवं सायंकाल विशेष उचित है। श्रावक जहां सामायिक करे, वह स्थान एकान्त, पवित्र शान्त एवं अनुकूल होना चाहिए। सामायिक या पोषध करते समय आसन, मुखवस्त्रिका, चरवला/मोरपीछी स्थापनाचार्य आदि सामग्री का सामान्यतः उपयोग होता है।

सामायिक के अन्य नाम भी हैं :-

१. सामायिक समभाव
२. सामायिक समग्र जीवों पर दयापूर्वक वर्तन।
३. सम्यग्वाद राग-द्वेष रहित सत्य कथन।
४. समास अल्प अक्षरों में कर्म विनाशक तत्वावबोध।
५. संक्षेप अल्प अक्षरों में गम्भीर द्वादशांगी।
६. अनवद्य पापरहित आचरण।
७. परिज्ञा-पाप परिहार से वस्तु - बोध।
८. प्रत्याख्यान- त्याज्य वस्तुओं का त्याग।

उक्त अष्ट सामायिकों पर आठ दृष्टांत भी हैं जिनके लिये द्वादश पर्व-व्याख्यानमाला आदि ग्रन्थ अवलोकनीय हैं।^{५१}

११/३ अतिथि संविभाग व्रत

अतिथये - विभजनम् - अतिथिसंविभाग - अतिथि के लिए

आहार, पानी कक्ष आदि का संविभाग करना अतिथि संविभाग व्रत है। शास्त्र इस व्रत को दान के अन्तर्गत भी लेते हैं। दान अनुग्रह का परिचायक है, किन्तु संविभाग सेवा का द्योतक है। पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में कहा गया है कि यथाजात रूप के धारक व्यक्ति के लिये विधिपूर्वक नवधा भक्ति के साथ आहारादि द्रव्य विशेष का स्व और पर के अनुग्रह - निमित्त अवश्य ही विभाग करें इसे अतिथि संविभाग नामक शिक्षाव्रत कहते हैं।

विधिना दातृगुणवता, द्रव्यविशेषस्य जा तरपाया ।
स्वपरानुग्रहहेतोः, कर्तव्योऽवश्यमतिथये भागः ॥ ५२

उद्गम आदि दोषों से रहित देशकालानुकाल, शुद्ध अन्नादिक का उचित रीति से दान देना गृहस्थों का अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत है :-

अन्नाईणं सुद्धाणं कप्पणिज्जाण देसकालजुतं ।
दाणं जईणेमुच्चियं गिहीण सिक्खावयं भणियं ॥ ५३

योगशास्त्र में भी यही कहा गया है कि अतिथियों को चार प्रकार का आहार अर्थात् अशन, पान खादिम स्वादिम भोजन, पात्र वस्त्र और मकान देना अतिथि-संविभाग व्रत कहलाते हैं :-

दानं चतुर्विधाहारपात्राच्छादनसद्मनाम् ।
अतिथिभ्यो तिथिसंविभागव्रतमुदीरितम् ॥ ५४

पौषधोपवास - व्रत

पोष + ध = पोषध, पोष यानी गुण की दृष्टि को धारण करने वाला "पोषध" कहलाता है। अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में द्वेष - निवृत्ति पूर्वक आहार - त्यागादि गुणों सहित निवास करना उपवास कहलाता है। पूर्वाचार्यों के अनुसार दोष से निवृत्त होकर गुणों सहित सम्यक् प्रकार से रहना - उपवास है, गुणरहित करने को पौषधोपवास कहते हैं :-

उपावृत्तस्य दोषेभ्यः सम्यग्वासो गुणै सह ।
उपवासः स विज्ञेयो न शरीरविशोषणम् ॥ ५५

आहार शरीर - सुश्रुषा, गृह व्यापार एवं मैथुन इन चार बातों का पौषधोपवास व्रत में परित्याग किया जाता है। पंचास्तिकाय के अनुसार -

आहारदेहसक्कार-बंधा वावार पोसहो य णं ।
देसे सव्वे य इमं, चरमे सामाइयं णियमा ॥ ५६

अर्थात् आहार, शरीर संस्कार अब्रह्म तथा आरम्भ त्याग ये चार बातें पौषधोपवास व्रत में आती हैं। इन चारों का त्याग एकदेश भी होता है और सर्वदेश भी जो सम्पूर्णतः पौषध करता है, उसे नियमतः सामायिक करनी चाहिए।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में यह विधान है कि प्रत्येक मास की दो अष्टमी और दो चतुर्दशी इन चारों ही पर्वों में अपनी शक्ति न छिपाकर सावधानी पूर्वक पौषधोपवास करने वाला पौषधनियम - विधायी श्रावक कहलाता है।

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि, मासे-मासे स्वशक्तिमनिबुह ।
प्रोषधनियमाविधायी, प्रणाधिपरः प्रोषधानशनः ॥ ५७

पौषध शब्द प्रोषध के रूप में भी प्रयुक्त है जिसका अर्थ है प्रकृष्ट औषध एक बार भोजन करना प्रोषध और बिल्कुल भोजन न करना उपवास। पर्व से पहले दिन सुबह के समय और उसके अगले दिन सन्ध्या के समय केवल एक-एक बार भोजन करना और पर्व वाले दिन दोनों समय भोजन न करना। इस प्रकार सोलह प्रहर तक सर्व आरम्भ का तथा भोजन का इसमें त्याग होता है।

पौषध व्रत का फल प्रतिपादित करते हुए कहा गया है :-

पोसहो य सुहे भावे, असुहाइ खवेइ णत्थि संदेहो ।

छिंदेइ नरयतिरियगइं, पोसह विहिअप्पमत्तेणं ॥^{५८}

अर्थात् यह बात निःसन्देह सही है कि पौषध करने वाला अप्रमत्त रहकर जो शुभ भाव से विधिपूर्वक पोषध करे तो उसके सकल दुःख नष्ट हो जाते हैं और नरक और तिर्यच गतियों का विच्छेद हो जाता है अर्थात् सद्गति का भोजन बन जाता है।

यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि श्रावक जब तक प्रोषधोपवास में अपना सारा समय व्यतीत करता है, तब तक वह श्रावक होते हुए भी महाव्रतधारी श्रमण की भूमिका के तुल्य है।

ऊपर हमने श्रावकाचार के बारह व्रतों का उल्लेख किया है। किन्तु व्रत बारह ही हों, ऐसी बात नहीं है। बारह से अधिक भी हो सकते हैं। यथा बारह व्रतों में उल्लिखित सामायिक व्रत षडावश्यक कर्म का एक अंग है। श्रावक यदि चाहे तो सामायिक के साथ साथ स्तवन, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान को भी अपने व्रत में समाविष्ट कर सकता है।

प्रस्तुत प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि श्रावक के लिए आवश्यक नहीं है कि वह उक्त बारह व्रतों को एक साथ पूर्णतया अंगीकार करे वह चाहे तो अपनी सुविधानुसार एक-दो या चार-पाँच व्रत भी स्वीकार कर सकता है या बारह के बारह व्रत भी। जैसे कुछेक लोग ब्रह्मचर्याणुव्रत ही स्वीकार करते हैं। जैसी जिस व्यक्ति की शक्ति और क्षमता होती है, वह तदनु रूप व्रतों का वरण करता है।

नियमपूर्वक श्रावकाचार का पालन करने वाला व्यक्ति पहले से बारहवें देवलोक तक जा सकता है। भविष्य में वह पुनः मनुष्य-जन्म प्राप्त कर श्रमण धर्म का वरण करता है और निर्वाण पा सकता है। उपासक-दशांग सूत्र के अनुसार उसमें सूचित दस श्रावक अब मात्र तीन जन्म और लेंगे तथा तीसरे जन्म में निर्वाण पद प्राप्त करेंगे।

उत्तराध्ययन सूत्र (५-२४) में लिखा है कि गृही-जीवन में सुव्रतों का पालन करके श्रावक देवलोक में जाता है —

एवं सिक्खा - समावन्ने, गिहि वासेवि सुव्वए ।

मुच्चई छविपव्वाओ, गच्छे जक्खनलोगयं ॥

१	तत्त्वार्थ सूत्र ७. १	२	श्रावक धर्म प्रज्ञप्ति ६
३	योग शास्त्र २. १	४	आतुर प्रत्याख्यान (३)
५	सावय पण्णाति (२५८)	६	बन्धवधच्छविच्छेदातिरोपणात्र पाननिरोधाः— तत्त्वार्थ सूत्र (७-२१)
७	योगशास्त्र २. १९, २१	८	योगशास्त्र २. २८-२९, २१
९	वही २.६३	१०	तत्त्वार्थ सूत्र ७. २२
११	सावय पण्णाति २६०-२६२		
१२	कन्यागो भूम्यलीकानि, न्यासापहरणं तथा कूटसाक्ष्यन्व पंचेति, स्थूलासत्यान्यकीर्तनय॥ योगशास्त्र २.५४		
१३	योगशास्त्र २-५५	१४	स्थानांग ६. ३
१५	योगशास्त्र २. ८४-७५	१६	तत्त्वार्थ सूत्र ६. २३
१७	सावय पण्णाति २६८	१८	योगशास्त्र २. १०९-१०
१९	योगशास्त्र २. ९९	२०	वही २. १०२
२१	सावय पण्णाति २७३	२२	तत्त्वार्थ सूत्र ७. २४
२३	उपदेशमाला २४३	२४	भक्त-परिक्षा १३२
२५	योगशास्त्र २. १०९-१०	२६	वही २. ११५
२७	उपदेशमाला २४४		
२८	बाहिरसंगा, खेतं वल्यु धणधन्नकुप्प भांडाणि। दुपयचउप्पय, केव सयणासणे य तथा॥ -भगवती आराधना १९		
२९	तत्त्वार्थ सूत्र ७	३०	आतुर प्रत्याख्यान ४
३१	तत्त्वार्थ सूत्र ७. १७	३२	योगशास्त्र २.३
३३	सामायिक पाठ २८०	३४	तत्त्वार्थ सूत्र ७. २६
३५	योगशास्त्र ३. ९६	३६	वसुनन्दी श्रावकाचार २१५
३७	तत्त्वार्थ सूत्र ७. २७		
३८	द्रष्टव्य :- अठेण तं न बंधइ, जमणटेण तु थोवबहु भावा। अट्टे कालाईया, नियागमा न उ अणट्टाए॥ सावयपण्णाति २९०		
३९	योगशास्त्र ३. ७४	४०	सावय पण्णाति २८९
४१	तत्त्वार्थ सूत्र ७. २८	४२	आतुर-प्रत्याख्यान १५
४३	तत्त्वार्थ सूत्र ७-१७		
४४	सामायिक देशावकासिक पौषधोपवासातिथि संविभागश्चत्वारि शिक्षा पदानीति धर्माबिंदु २. १८		
४५	वज्जंमणंत गुंवरि, अच्चंगापं च भोगओ माणं। कम्मयओ खरकम्मा, इयाण अवरं इमं भपियं॥ पंचास्तिकाय १. २१		
४६	योगशास्त्र ३. ४-५		
४७	योगशास्त्र ३. ६-७	४८	संबोध सत्तरि २५
४९	क विशेषावश्यक भाष्य २६९०		
	ख नियमसार १२६		
५०	अनुयोगद्वार सूत्र २७		
५१	सामाज्यं समइयं, समवाओ समास संखेओ । अणवज्जं च परिण्णा पच्चक्खाणे य ते अट्टम॥		
५२	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १०९	५३	पंचास्तिकाय १. ३१
५४	योगशास्त्र ३. ८७		
५५	रत्नकरण्ड श्रावकाचार १४०	५६	पंचास्तिकाय १. ३०
५७	द्रष्टव्य - समणसुतं पृ. २७०	५८	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १५७